वार्तिक तिलक।

श्रीभगवंत जी के पिता श्रीमाधवदास जी के अन्त काल में, तब कोई बेसुधि जानके आगरे से पालकी पर वृन्दावन को ले चले; जब आधे मार्ग में पहुँचे, तब आपको सुधि हुई; बड़े दुखित होकर लोगों से पूछा कि "अरे क्रूर लोगो! मुझे कहां लिये जाते हौ?" लोगों ने उत्तर दिया कि "जिसका आप नित्य ध्यान करते थे, उसी वृन्दावन को लिये चलते हैं," आपने कहा कि "फेर ले चलो, यह शरीर श्रीवृन्दावन जाने का पात्र नहीं है, वहां जलावोगे तब प्रिया प्रितमको दुःसह दुर्गन्धि प्राप्त होगी, जो जानेवाला है, सो जीव जुगल के पास पहुँचेगा"। ऐसे भावके भरे श्रीमाधवदास जी आगरे में आकर शरीर छोड़ प्रिया प्रितम को प्राप्त हुये॥

दो०। जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह।
तुलसी ते प्रिय रामके, कानन बसहिं कि गेह॥१॥
भजन भरोसे राम के, मगहर तजे शरीर।
अबिनाशी के गोद में, बिलसैं दास कबीर॥२॥

(२७३) श्रीलालमति देवी जी।

(८२८) मूल। छप्पै (८४३–८२८=१५)

दुर्लभ मानुष देह कौ, "लालमती" लाहौ लियौ॥ गौर स्याम सों प्रीति, प्रीति जमुना कुंज-नि सों। वंसीवट सों प्रीति, प्रीति वृजरज पुंजनि सों॥ गोकुल गुरुजन प्रीति, प्रीति घन बारह बन

सों। पुर मथुरासों प्रीति, प्रीति गिरि गोवर्द्धन सों॥ वास अटल वृन्दा बिपिन, दृढ़करि सो नागरि कियौ। दुर्लभ मानुष देह कौ, "लालमती" लाहौ लियौ॥ १९९॥ (२१४-१९९=१५)

यहां किसी छपी प्रति में एक छप्पय अधिक है; पर किसी लिखी प्रति में वह पाया नहीं जाता॥

वार्तिक तिलक।

देवी श्रीलालमती जी ने दुर्लभ मनुष्य देह का लाभ भले प्रकार लिया। क्योंकि गौर श्याम श्रीराधाकृष्ण जी में अति प्रीति थी; जमुना जी में और जमुना कूल के कूंजों में अति प्रीति, बंसीवट में और ब्रज रज के पुंजों में प्रीति, गोकुल में तथा गोकुल निवासी गुरूजनों में प्रीति, और सघन बारहो बन में प्रीति, पुर मथुरा से प्रीति, और गिरि गोवर्द्धन से प्रीति थी; उस नागरी ने अर्थात् प्रीति पथ प्रबीना ने इन सबों की प्रीति से युक्त अचल दृढ़ बृन्दाबन बास कर, मनुष्य देह का लाभ लिया॥

(८२९) टीका। छप्पै (८४३–८२९ = १४)

कबिजन करत बिचार बड़ौ कोउ ताहि भनिज्जै। कोउ कह अवनी बड़ी जगत आधार फनिज्जै॥ सो धारी सिर सेस सेस शिव भूषन कीनौ। शिव आसन कैलास भुजा भरि रावन लीनौ॥ रावन जीत्यौ बालि बालि राघो इक सायक दँड़े। अगर कहै त्रैलोक में हरि उर धारैंते वड़े॥२००॥ (२१४–२०० = १४)

वार्तिक तिलक।

☞ यहां तक, गोस्वामी अनन्त श्रीनाभा जी महाराज इतने भक्तों सन्तों के नाम वर्णन कर चुके। अब कुछ माहात्म्य और अनुक्रमणिका लिखते हैं।

कबिजनों ने बिचार किया कि जो कोई बड़ा हो उसी का सुयश हम भनैं (गान करैं)। (स०) "को बड़ है जग में घरणी घरणी रज ज्यों सिर लीन्हे अनन्त हैं। सोई भुजंग "मणीरसरंग"—अनंगअरि उर हार लसंत है॥ संभु स-शैल उठायो दशानन, रावनै वालि दबायो दुरंत है। राघव बालि विदारे तिन्हैं हिय धारे तेई सबते बड़े सन्त हैं"॥ श्रीअग्र दास जी कहते हैं कि "तीनों लोक में जो इतने बड हरि को अपने हृदय में धारण किये हुए हैं, वेई सन्त सबसे बड़े हैं। उन्ही का यश गान करना चाहिये"॥

(८३०) मूल। छप्पै (८४३–८३० = १३)

हरि सुजस प्रीति हरिदास कैं त्यौं भावै हरि

दास जस ॥ नेह परस पर अघट निवहि चारों जुग आयौ। अनुचर कौ उतकर्ष स्याम अपने मुख गायौ ॥ ओत प्रोत अनुराग प्रीति सबही जगजानैं। पुर प्रवेश रघुवीर भृत्य कीरति जु वखानैं ॥ अगर अनुग गुन बरनते सीतापति नित होयँ बस। हरि सुजस प्रीति हरिदास के त्यों भावै हरिदास जस ॥२०१॥ (२१४–२०१ = १३)

वार्तिक तिलक।

श्रीभगवान हरि का सुयश सुनने में जैसे हरिदासों की प्रीति है, ऐसही अपने दासों का सुयश सुननेमें श्रीहरि की भी प्रीति है; श्रीभगवत् और भगवद्भक्तों का परस्पर अघट एक रस स्नेह कृतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगोंमें निबह आया, और जैसे भक्त लोग भगवत की कीर्ति कहते हैं तैसही भगवान् भी अपने भक्तोंकी कीर्त्ति कहते हैं, सो देखिये "भागवत एकादश" में उद्धव के प्रति श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अपने अनुचरों (भक्तों) के उत्कर्ष अर्थात् अतिशय यश अपने मुखसे गान किये हैं, और प्रभु श्री रघुबीर जी ने भी (जब वनसे आकर श्रीअवधपुर में प्रवेश करने लगे तब) श्रीभरत वशिष्ठ सुमंत्र आदिकों से अपने भृत्य हनुमत, सुग्रीवादि बानरों की कीर्त्ति श्रीमुखसे बखान किये हैं॥ इस प्रकार भगवतका भक्तों के बिषय अनुराग और भक्तों की भगवत में प्रीति ओत प्रोत है सो सम्पूर्ण जगत जानता है।

श्रीअग्रस्वामी कहते हैं कि दासोंके गुण वर्णन करने से तथा सुनने से श्रीसीतापति जी नित्य ही बस होते हैं इस्से वर्णन करना चाहिये। (श्लोक भागवते)—

निरपेक्षं मुनिं शांतं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यंमूयेयेत्यं घ्रिरेणुभि ॥
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहं।
मदन्यंते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥

(तथा वाल्मीकिय रामायणे) सख्यंच रामः सुग्रीवे प्रभावञ्चानिलात्मजे। वानराणाञ्च तत्कर्म राक्षसानांचतद्वलं बिभीषण संयोग माचचक्षेच मंत्रिणाम् ॥ (चौपाई)—ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे ॥ मम हित लागि जन्म इनहारे। भरतहुँते मोहि अधिक पियारे ॥

(८३१) मूल। छप्पै (८४३-८३१ = १२)

उतकर्ष सुनत संतनि कौ, अचरज कोऊ जिनि करौ ॥ दुर्वासा प्रति, स्याम दासवसता हरि भाषी। ध्रुव, गज, पुनि प्रहलाद, राम, शवरी फल साखी ॥ राजसूय जदुनाथ चरण धोय जूँठ उठाई। पांडव बिपति निवारि, दियौ बिष बिषया पाई ॥ कलि बिशेष परचौ प्रगट, आस्तिक ह्वैकै चित धरौ। उतकर्ष सुनत संतनि कौ अचरज कोऊ जिनि करौ ॥२०२॥ (२१४-२०२ = १२)

वार्त्तिक तिलक।

श्री भक्तमालकार स्वामी सबसे कहते हैं कि सन्तों का उतकर्ष अर्थात् उत्तम प्रताप प्रभाव प्रभु के दिये परचौ आदिक सुनके कोई आश्चर्य मत करो कि "यह कैसे हुआ? हमारे मन में नहीं आता!" देखो चारो युगों में भगवानने अपने भक्तों की रक्षा की, और उनके साथ अनेक आश्चर्य चरित्र किये। दुर्वासा जी से श्रीनारायण भगवान जी श्रीमुख से कहा कि "हे मुने! हम अपने भक्तों के आधीन, और उनके बस हैं"॥ और देखो ध्रुव जी पर कैसी कृपा की और गजराज की कैसी रक्षा की, प्रहलाद भक्त के लिये किस प्रकार खंभा फाड़के नृसिंह रूप धारण किया और श्रीरघुनन्दन जीने श्री शबरी जी पर कैसी कृपा करके फल खाये तथा उनके चरणों से जल शुद्ध किया, और माता के समान मानि परम पद दिया॥ ये सब भक्त साखी दे रहे हैं श्री युधिष्ठिर जी के राजसूय यज्ञ में श्रीयदुनाथ (कृष्ण) जी ने भक्तों के चरण धोये और जूँठे पात्र उठाये, फिर पाण्डवों की विपत्ति नास की, ऐसेही श्री चन्द्रहास भक्तने विष के पलटे बिषया स्त्री पाई, इस प्रकार कृत युग, त्रेता, द्वापर, के भक्तों की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है; और, कलियुग में विशेष भक्तों के परचौ प्रगट जो हम (श्रीनाभास्वामी) ने गान किया है जैसे पृथ्वीराज को प्रभु ने द्वारका से आकर दर्शन दिया, नामदेव के हाथ से दूध पिया, कर्म्मा की खीड़ीचड़ी खाई, त्रिलोचन भक्त के घर में रहके चौदह महीने सन्त सेवा

की, सदावृति भक्त का बेटा मरगया जलादिया और फिर आगया; इत्यादिक(☞ और आज भीश्रीहरिकृपा विशेष अलौकिक अनुभूत हो ही जाती है,) सो श्रीहरिकृपा में आस्तीक होकर चित्त में विश्वास धारण कर सुनो और भक्ति पथ में चलो।

(ग्रन्थ फल स्तुति) (८३२) मूल। दोहा (८४३-८३२=११)

पादप पेंड़हिं सीचतें, पावै अँग अँग पोष।
पूरबजा ज्यों बरनते, सब मानियो सँतोष। २०३

वार्तिक तिलक।

श्रीनाभा स्वामी जी ने जिन सन्तों के यश इस ग्रंथ में नहीं बरनन किये उनसे तथा आगे होने वाले सन्तों से प्रार्थना करते हैं। कि जैसे वृक्ष के मूल को सींचने से उसके स्कंध शाखा आदिक सब अंग पुष्ट और हरित होते हैं ऐसे ही पूरबजा की नाईं अर्थात् दोपहर के पीछे की छाया जैसे छोटीसे बढ़ती जाती है वैसेही मैं अपनी प्रीति श्रद्धा बढ़ा के आपके पूर्वज श्रीआचार्य गुरुजन मूल पुरुषोंके यश जो मैंने वर्णन किये उसी में आप सब भी संतोष मानिये और मुझ पर प्रसन्न हूजिये।

(८३३) मूल। दोहा (८४३-८३३=१०)

भक्त जिते भू लोक में, कथे कौन पै जायँ।
समुँद पान श्रद्धा करै, कहँ चिरि पेट समायँ२०४

(२१४—२०४=१०)

वार्तिक तिलक ।

भूलोक में जितने भगवद्भक्त हैं वे सब किससे कहे जा सकते हैं! जैसे सब समुद्रों का जल पी लेनेकी कोई चिरि (चिड़िया) श्रद्धा करै तो क्या उसके पेटमें समा सकताहै ?

(८३४) मूल । दोहा (८४३–८३४=९)

श्रीमूरति सबवैष्णवलघु दीरघगुणनिअगाध।
आगे पीछे बरनते, जिनि मानौ अपराध २०५॥
(२१४–२०५=९)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीनाभा स्वामी जी सब वैष्णवों से प्रार्थना करते हैं कि "आप सब श्रीभगवत, शालग्राम जी की मूर्ति हैं, सो जैसे सालग्राम जी की मूर्ति बड़ी होय या छोटी होय पर उनका गुण माहात्म्य सबोंकाही अथाह है; ऐसेही, आपसबका गुण माहात्म्य अथाह है, किसीका आगे किसीका पीछे बर्णन हुआ है, सो कृपा करकेअपराध मत मानियेगा क्षमा किजियेगा । "

(८३५) मूल । दोहा (८४३–८३५=८)

फल की सोभा लाभ तरु, तरुसोभा फलहोय।
गुरू शिष्य की कीर्तिमें, अचरज नाहीं कोय २०६
(२१४—२०६=८)

वार्त्तिक तिलक ।

जैसे वृक्ष में लगे रहने से फलों को शोभा मिलती है, और फलों से वृक्ष को भी अधिक शोभा प्राप्त होती है ऐसे

ही गुरु शिष्य की कीर्तिमें है अर्थात् गुरू रूपी वृक्षसे फल रूपी शिष्य को कीर्ति शोभा प्राप्त होती है और फल रूपी शिष्यों से गुरू वृक्ष को अधिक कीर्ति शोभा मिलती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। दोनों पिछले छप्पै भी देखिये॥

(८३६) मूल। दोहा (८४३-८३६ = ७)

चारि जुगन मैं भगत जे, तिनके पदकी धूरि।
सर्वसु सिर धरि राखिहौं, मेरो जीवन मूरि २०७
(२१४—२०७ = ७)

वार्त्तिक तिलक।

चारों युगों में जो भगवतभक्त हुए हैं और होंगे, उन सबों के चरणों की धूलि मैं अपने शीस पर धारण कर रक्खूंगा, क्योंकि वही मेरा धन प्राण सर्वसु और जीवन मूरि है।

(८३७) मूल। दोहा (८४३-८३७ = ६)

जग कीरति मंगल उदैं, तीनो ताप नसायँ।
हरिजन को गुण बरनते, हरि हृदिअटलबसायँ२०८
(२१४-२०८ = ६) इसे मनस्थ कीजिये॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीहरिजनों के गुण बर्णन करना परम साध्य है, जो कोई हरि भक्तों का गुण वर्णन करता है उसके तीनों ताप नास होते हैं और जगत में कीर्ति तथा मंगल का उदय होता है, और उसके हृदय में श्रीहरि अचल निवास करते हैं।

(८३८) मूल। दोहा (८४३–८३८=५)

हरिजन को गुण बरन ते, जो करै असुया आय।
इहां उदर बाढ़ै बिथा, औ परलोक नसाय २०९
(२१४–२०९=५)

वार्तिक तिलक।

श्रीहरिजनों के गुण यश वर्णन करने में श्रीभक्तमाल की कथा कहते सुनते में, जो कोई दुष्ट आकर असूया (निन्दा कुतर्क) करता है, उसके पेट में, इस लोक में जलंधर, शूल, आदिक रोगों की व्यथाएँ बढ़ती हैं, और परलोक भी नष्ट हो जाता है।

श्लोक। योहि भागवतां लोके उपहासं द्विजोत्तम।
करोति तस्य नश्यन्ति धर्ममर्थों यशः सुताः॥ १॥
निन्दां कुर्वन्ति ये मूढ़ा वैष्णवानां महात्मनम्।
पतन्ति पितृभिस्सार्द्ध महा रौरवसंज्ञके॥ २॥

चौ०-होहिं उलूक सन्त निन्दारता। मोहनिशा प्रियज्ञानभाउगता।

(८३९) मूल। दोहा ८४३–८३९=४)

जौ हरि प्राप्तिकी आस है, तौ हरिजन-गुनगाय।
नतरु सुकृत भुँजे बीज ज्यों,जनम २पछिताय२१०

वार्तिक तिलक। इसे कभी नहीं भूलिये॥

जो श्रीहरि रूप प्राप्ति होने की आशा किसी को होय तो श्रीहरि भक्तों के गुण यश सप्रेम गान करे इससे श्रीहरि अवश्य मिलते हैं। और जो श्रीभगवद्भक्तों के

सुयश का निरादर करके और अनेक सुकृत धर्म कर्मों का आस करता है तो, जैसे भूँजा बीज (अन्न) भूमि में बोने से जनमता नहीं है बरञ्च सड़ जाता है, ऐसे ही उसके सुकर्म व्यर्थ होजाते हैं। वह प्राणी जन्म जन्म पश्चात्ताप करता है और करैगा। प्रियपाठक! यह समझने की बात है।

(८४०) मूल। दोहा (८४१-८४०=१)

भक्तदाम संग्रह, करै, कथन स्रवन अनुमोद।
सो प्रभु प्यारो पुत्र ज्यों, बैठे हरि की गोद॥२११॥
(२१४-२११=३)

वार्तिक तिलक।

श्री भक्तदाम ("भक्तमाल") इस ग्रंथ को जो कोई प्रेमपूर्वक कहैगा और सुनैगा तथा संग्रह अनुमोदन करैगा अर्थात् भाव और अर्थ विचार के आनन्दित होगा सो प्रभु के पुत्र के समान प्यारा होगा, और श्रीहरि के गोद (अंक) में बैठेगा।

यह श्रीनाभा स्वामी जी कृत आशिर्वाद है।

(श्लोक) तिष्ठते वैष्णवं शास्त्रं लिखितं यश मन्दिरे।
तत्र नारायणो देवः स्वयं वसति नारद॥१॥

(८४१) मूल। दोहा (८४३-८४१=२)

अच्युतकुल जस यकबेरहुं, जाकीमति अनुरागि।
उनकी भक्ति * सुकृतको, निंहचै होय विभागि॥२१२॥
(२१४-२१२=२)

* भजन।

वार्तिक तिलक।

इस अच्युत कुल (वैष्णवों) के यश में एक बेर भी जिसकी मति ने अनुराग किया, अर्थात् प्रेमपूर्वक कथन या श्रवण किया, सो अनुरागी इन सब सन्तों के भक्ति भजन सुकृत का विभागी होगा अर्थात् अवश्य भाग पावेगा ☞ इसमें सन्देह नहीं है।

(८४२) मूल। दोहा (८४३–८४२=१)

भक्तदाम जिन जिन कथी, तिनकी जूंठनि पाय।
मों मति सार अक्षर है, कीनों सिलौ बनाय २१३
(२१४–२१३=१)

वार्तिक तिलक।

जिन जिन महानुभावों ने भगवद्भक्तों के सुयश की माला कही है उन्हीं की जुठनि पायके मेरी मति सारांस उञ्छ सिला बनाकर चुन बिन के दो चार अक्षर और मिला के भक्त माल बना दी है। (आपकी दीनता है)

(८४३) मूल। दोहा (८४३–८४३=०)

काहू के बल जोग जग, कुल करनी की आस।
भक्तनाम माला अगर, उर(बसो)नारायणदास १२४
(२१४–२१४=०)

इतिमूल भक्तमाल

वार्तिक तिलक।

किसी के योग का बल है और किसी के यज्ञ का बल है और किसी के कुल का बल है तथा किसी के अपनी करनी के फल की आसा है परन्तु मेरे तो योग यज्ञ कुल करनी किसी की भी आसा नहीं है, केवल यही आस है कि अनन्तश्री गुरू अग्र स्वामी की कृपा से मुझ नारायणदास (नाभा) के हृदय में श्रीअग्रदेव तथा यह भक्त–नाम–माल बसैं (या, बसे हैं) ॥

इति श्रीमद्रामानन्दीय वैष्णव श्री १०८ अग्रदेव शिष्य नाभाख्य श्रीनारायणदास प्रथिता भगवद्भक्त रत्नमाला सटीक समाप्ता, श्रीभगवत्प्रीयताम् ॥

टीका कर्त्ता अब आगे वर्णन करते हैं कि–

(कबित्त) रसिकाई कबिताई जीन्ही दीनी तिनि पाई भई सरसाई हिये नव नव चाय हैं। उर रंग भवन में राधिका रवन बसैं लसैं ज्यौं मुकुर मध्य प्रतिबिंब भाय हैं॥ रसिक समाज में बिराज रसराज कहैं चहैं मुख सब फूलैं सुख समुदाय हैं। जन मन हरि लाल मनोहर नांव पायो उनहूं को मन हरि लीनौ तातें राय हैं॥ ६३०॥

इन ही के दास दास दास प्रिया दास जानौ तिन लै बखानौ मानौ टीका सुखदाई है। गोवर्द्धननाथ जू कें हाथ मन पर्‍यौ जाको कर्‍यौ बास वृन्दावन लीला मिलि

गाई है ॥ मति उनमान कह्यौ लह्यौ मुख संतनि के अंत कौन पावै जोई गावै हिय आई है । घट बढ़ जानि अपराध मेरौ क्षमा कीजै साधु गुणग्राही यह मानि मैं सुनाई है ॥ ६३१ ॥

वार्तिक तिलक ।

श्री ५ प्रियादासजी कहते हैं कि—

मेरे गुरुदेवजी (श्रीमनोहरदास जी) स्वयं बड़े कवि और भारी रसिक तो थे ही, वरं ऐसे महात्मा थे कि आपने जिस्को जिस्को कृपा करके कविताई तथा रसिकाई दी, उस उसने भी पाई; तात्पर्य यह है कि ये दोनों वस्तु श्री गुरुदेव प्रसाद से मुझे भी मिली; हृदय में सरसता के नये नये उत्साह हुये। श्रीगुरुदेवजी के हृदय रूपी रंगभवन में श्री राधिकारमण जी इस प्रकार विराजते थे कि जैसे दर्पण रूपका प्रतिबिंब विराजता है । आप रसिक मण्डली के मध्य में विराजमान होकर जब रसराज (शृङ्गार) कहते थे, तब सब सज्जन सुनके आपके मुख की ओर देख देख सुख से फूल जाते थे। श्रीलालजी ने तो अपने जनों के मन हर लेनेसे " मनोहर " नाम पाया, पर मेरे गुरु भगवान जी ने श्रीमनोहर लाल का भी मन हरलिया, इस्से सच्चे "मनोहरराय" थे ॥६३०॥

अब टीकाकार दो चरणों में तो परोक्ष और दो चरणों में प्रत्यक्ष विनय सज्जनों से करते हैं कि- जानिये कि इन्ही श्री मनोहरराय के दासों के दास का दास प्रियादास है कि जिसने श्रीभक्तमाल की यह सुख देनेवाली टीका बखान की है; और जिसका मन श्रीगोवर्द्धननाथ जी के हाथों में पड़ गया, इसीसे श्री वृन्दावन में वास करके यह भगवत भागवतों की मिलित लीला जिसने (मुझ प्रियादास ने) गान की । सो, मैंने जिस प्रकार सन्तों के मुख से सुना वैसाही अपनी मतिके अनुसार गाया । सन्तों के चरित्र का अन्त कौन पा सकता है ? कि सम्पूर्ण गान करै, जितनी हृदय में आई उतनी कथा मैंने गान की (गाई) । सन्तों की इन कथाओं के कहने में जो घटी बढ़ी होगई हो, सो मेरा अपराध आप कृपा करके क्षमा कीजियेगा । क्योंकि साधुलोग केवल गुणोंही को ग्रहण करते हैं, अवगुण में दृष्टि नहीं देते । ऐसा समझके मैंने यथा मति कथा सुना दी है ॥ ६३१ ॥

क०। कीनी भक्तमाल सुरसाल नाभा स्वामी जू ने तरे जीवजाल जग जन मनजोहनी। भक्ति रस बोधनी सो टीका मति सोधनी हैं बांचत कहत अर्थ लागै अति सोहनी॥ जो पै प्रेम लक्षना की चाह अवगाहि याहि मिटै उरदाह नैकु नैननिहूं जोहनी। टीका और मूल नाम भूल जात सुनै जब रसिक अन्यन मुख होत विश्वमोहनी॥ ६३२॥

नाभा जू कौ अभिलाष पूरन लै कियो मै तौ ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइ कै। भक्ति विस्वास जाके ताही कों प्रकाश कीजै भीजै रंग हियो लीजै संतनि लडाइ कै॥ संमत प्रसिद्ध दस सात सत उन्हत्तर फालगुन ही मास वदी सप्तमी विताइकै। नारायणदास सुख रास भक्तमाल लै कै प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइकै॥ ६३३॥

अगिनि जरावौ लैके जल में बुड़ावौ भावै सूली पै चढ़ावौ घोरि गरल पिवायवी। वीछू कटवावौ कोटि सांप लपटावौ हाथी आगे डरवावौ ईति * भीति उपजायवी॥ सिंघ पै खवावौ चाहो भूमि गड़वावौ तीखी अनी बिधवावौ मोहि दुख नहीं पायवी। ब्रजजन-प्रान कान्ह बात यह कान करौ भक्ति सो बिमुख ताको मुख न दिखायवी॥ ६३४॥

इति "भक्तिरसबोधिनी"

* "ईति"-(श्लोक) अतिवृष्टिरना वृष्टिर्भूतका शलभा शुकाः। स्वचक्रं परचक्रं च सप्तैता ईतयः स्मृताः॥ " १॥ अर्थात् अत्यन्त बर्षा का होना, बर्षा का नहीं होना, भूत उपद्रव, टिड्डियों का उपद्रव, और किसी चिड़ियाओं का उपद्रव, आपस का द्रोह, पराए किसी का अत्या चार, इन सातोंको, स्मृतिया कहती हैं कि, "ईति" यही हैं॥

वार्तिक तिलक ।

श्री नाभा स्वामी कृत सुन्दर रसाल भक्तमाल जो भक्तजनों के मन चुभ जाती है, और जिस को कथन, श्रवण करके अनेक जीव जगत से तर जातेमें हैं, उसी श्री भक्तमाल की यह "भक्तिरसबोधनी" टीका मति को शुद्ध करने वाली है। इस्को पढ़कर अर्थ कहने में अतिही सुहावनी लगती है। जो कदाचित् किसी को प्रेम लक्षणा भक्ति की चाह हो, और इस टीका को मानसिक नेत्रों से देख के अवगाहै अर्थात् इसमें प्रवेश करे, तो अवश्य उसके हृदय की ताप मिट जाय, और प्रेमा भक्ति को प्राप्त हो। इस्को सप्रेम सुनने में टीका और मूल का नाम भूल जाता है, यह भेद नहीं बूझ पड़ता कि हम मूल सुन रहे हैं कि टीका। और, भगवत रसिक अनन्यों के मुख से तो इसकी कथा विश्वमोहिनी हो जाती है ॥ ६३२ ॥

श्री प्रियादास जी कहते हैं कि श्री नाभा स्वामी जी का अभिलाष मैंने पूर्ण किया। उस अभिलाष की साक्षी मैंने प्रथमही प्रारंभ में भले प्रकार गान करके सुना दी है। जिसको भगवत भक्ति में विश्वास हो, उसी को यह ग्रंथ प्रकाश करना (सुनाना) चाहिये; अभक्त अविश्वासी को नहीं; भक्तियुक्त को सुनाने से उसका हृदय प्रेम रंग से भींग जायगा तब प्रेम लाड़ लड़ाके सन्तों की सेवा करेगा।

प्रसिद्ध विक्रमीय सम्वत् १७६९ (सत्रह सौ उन्हत्तर) के फाल्गुण कृष्ण सप्तमी को टीका (भक्ति रस बोधिनी) पूर्ण हुई।

टीकाकार (श्री ५ प्रियादासजी) प्रार्थना करते हैं कि "हे श्रीनारायणदास जी स्वामी (श्री १०८ नाभा स्वामी) ! अपनी सुखरास भक्तमाल लेके मुझ प्रियादास को अपना दास जानकर मेरे हृदय में बसके छा रहिये" ॥ ६३३ ॥

अन्त में, श्री प्रिया हे प्रभो मेरे जन्म जन्मान्तरीय दुष्कर्म पातकों से जो आपकी इच्छा हो, तो चाहे मुझे अग्नि में जला दीजिये, जल में डुबा दीजिये, सूलीपर चढ़वा दीजिये, हलाहल विष घोर के पिवा दीजिये, बहुत से बिच्छुओं

से कटवा दीजिये, कोटान सांप देहमें लपटवाके उनसे कटवा दीजिये, मत्त हाथी के आगे डलवा दीजिये, सिंहको खिलवा दीजिये, भूमि को खोदके मुझे गड़वा दीजिये, चोखी बरछी से बेधवा दीजिये, वा, भीती का भय उत्पन्न कर दीजिये, इन ग्यारह प्रकार के महा कष्टों से मुझे वैसा दुःख नहीं प्राप्त होगा; परन्तु 'हे भक्तजन प्राणनाथ! करुणानिधे भगवान् यह मेरी प्रार्थना मन लगाके सुनिये और स्वीकार कीजिये, कि जो आप की भक्ति से विमुख हो उसका मुख मुझे कभी मत दिखलाइये' अर्थात् उसके मुख देखने ही से मेरी रक्षा कीजिये; और, संग संसर्ग की तो बातही क्या है ॥ ६३४ ॥

छप्पै—सखा रामरसरंगमणि, नाम जपत अति प्रीति नित ॥

गुरु प्रद सीताराम सरन गहि तिलक मालधर ।
अगुन सगुन बुधि बोध, राम जस ललित कवितकर ॥
तुलसिदास बालमीकि रचित रामायन नेही ।
अर्थ भाव बिद सुनत सरस-दृग, पुलकित-देही ॥
रूपकला कह, धाम बसि, सियपिय प्रीति अनन्य चित ।
सखा रामरसरंगमनि, नाम जपत, अति प्रीति नित १॥

क० । मूल भक्तमाल "नाभास्वामी जू" दयाल कृत, टीका रची "प्रियादास" भक्त गुण ग्राम है । कियो रामरसरङ्गमणि की सहाय पाय "रूपकला" अर्थ "भक्ति सुधास्वाद" नाम है ॥ सम्वत उनीस शत छ्यासठ (१९६६) जानकि नौमी, बसिकै प्रमोदबन अवध सु धाम है । चूक छमि सन्त, कहैं सुनैं कृपावन्त, मोहि देहिं सीताकन्त पद प्रीति अभिराम है ॥ १ ॥

जय जय श्री जानकी जानकीजीवन जी, जय जय, प्रणमामि प्रणमामि; तुम्हारी अनन्त कृपा के लिये अनेक धन्यवाद। युगल सरकार ! जो तुम्हें अपने हृदय में धारण करते हैं, वे ही तीनों लोक में सब से बड़े हैं, और जैसे तुम्हारे भक्तों को तुम्हारा सुयश सुनना गाना प्रिय है, वैसे ही तुम्हें भी अपने भक्तों सन्तों के ही यश परम प्रिय हैं; अतएव कई वर्षों से श्रीभक्तमाल पर तिलक सीधा टेढ़ा कुछ करने का महामनोरथ था। परन्तु इतने बड़े और इतने भारी काम में स्वतन्त्रेण हाथ लगाने का साहस नहीं ही होता था।

तुम्हारी असीम कृपा से, परमहंस पण्डित श्री ६ गङ्गादास[1] जो महाराज (बड़ी कुटिया), कृपासिन्धु स्वामी श्री ६ रामवल्लभाशरण[2] महाराज जी (श्रीजानकीघाट), पण्डित वर श्री ५ राम नारायणदास[3] जी (रामकोट), पुजारी श्री ५ श्यामसुन्दरीशरण[4] जी प्रेमसिन्धु (श्रीकनकभवन), और श्री ५ सियाशरण[5] जी मधुकर, विशेषतः इन पांच महानुभावों के पुनः पुनः उत्साह दिलाने से, इस अज्ञ अबला ने इस परमावश्यकीय में हाथ डाला ही, क्योंकि भजने के लिये तुम तथा तुम्हारे भक्त ही वस्तुतः सुलभ हैं।
निदान श्रीगणेशायनमः श्रीहनुमतेनमः कर चली ही तो।

तुम्हारी कृपा से, श्री ५ रामरसरङ्गमणि जी से इसमें बड़ी भारी सहायता प्राप्त हुई; श्री सीतारामीय मुन्शी तपस्वीराम जी की " रुमूज़े-मेह्र-व-वफ़ा " (رموز مهر و وفا) से

तथा पण्डित श्री भानुप्रताप तिवारी जी* (चनार) से भी सहायता मिली; श्रीसीतामढ़ी के बाबू बलदेवनारायणसिंह जी (वकीले गया) की पूरी श्रद्धा हुई; एवं, तुमने भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्रजी के भ्राता श्रीराधाकृष्णदास जी, तथा विज्ञवर डाक्टर ग्रियर्सन महाशय (Dr. G. A. Grierson. C. I. E.) से भी सहायता दिलाई। इन सब के निमित्त, तुम्हें असंख्य धन्यवाद हैं। जयतु जयतु, नमामि नमामि।

(* जिन्होंने श्रीगोस्वामी कृत "विनय पत्रिका" तथा श्री कबीर "बीजक" को इङ्गरेज़ी में उलथा किया है॥)

श्री युगलसर्कार! सन्तों का तो धन ही है किन्तु तुम्हें श्रीमद्भागवत तथा श्रीभक्तमाल जी से कैसा सम्बन्ध है, एवं इनके अनुमोदन करनेवालों पर तुम्हारी कैसी दृष्टि हुवा करती है, सो मर्म तो विरलेही जन तुम्हारी कृपा से जानते हैं। अस्तु।

यह प्रबन्ध पांच वर्ष में समाप्त हुवा; तुम्हारी प्रिय वस्तु तुम्हें सविनय समर्पित है; लो इसे अपनाओ। श्रीभक्तमाल को कृपा करके मुझ दीन से कहला लिया सुन लिया; अब दया करके कुछ और कृपा करो। सतसंग और प्रेमाभक्ति परा अनुरक्ति मांगनी तो " छोटा मुँह, बड़ी बात ", तथा " चहिये अमिय, जग जुरै न छांछी "। परन्तु—

चारि जुगन में भगत जे, तिनके पद की धूरि।
सर्बसु सिर धरि राखिहौं, मेरी जीवन मूरि॥ १॥

काहू के बल जोग जग, कुल करनी की आस।
भक्तनाममाला अगर, उर नारायणदास ॥ २ ॥
आप आपने ते अधिक, जेहि प्रिय सीताराम।
तेहिके पग की पानही, तुलसी तनु को चाम ॥ ३ ॥
रामभक्त प्रिय लागहिं जेही।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥४॥

यह बुद्धि, इस में अटल प्रतीति, वास्तविक दीनता नम्रता, एवं अपने प्यारे प्यारियों की सहज स्तुति, चरणामृत तथा सीथ प्रसादी और अपने युगलनाम ("सीताराम") में विशुद्ध अविरल निष्ठा, अपनी इस चेरी को अनुग्रह करो। तुम्हारी जय हो; करुणामय शोभाधाम तुम बने रहो। श्रीजानकीजानकीवल्लभ जी! ललीलाल! तुम्हारे प्यारे प्यारियों की, तथा तुम्हारी, जय, जय, जय; नमामि नमामि; भजामि, प्रणमामि, नमामि नमामि ॥

श्रीजानकी नवमी	तुम्हारी रूपकला
सम्वत् १९६६, श्रीअयोध्या	(सीतारामशरण भगवानप्रसाद)

कलि अब्द ५०१०

इति श्रीभक्तमाल 'भक्तिसुधास्वाद' नाम तिलक समाप्त ॥

श्रीसीतारामार्पणमस्तु



श्रीसियसहचरी नारायणदास (श्रीनाभास्वामी) कृत

श्रीभक्तमाल

की

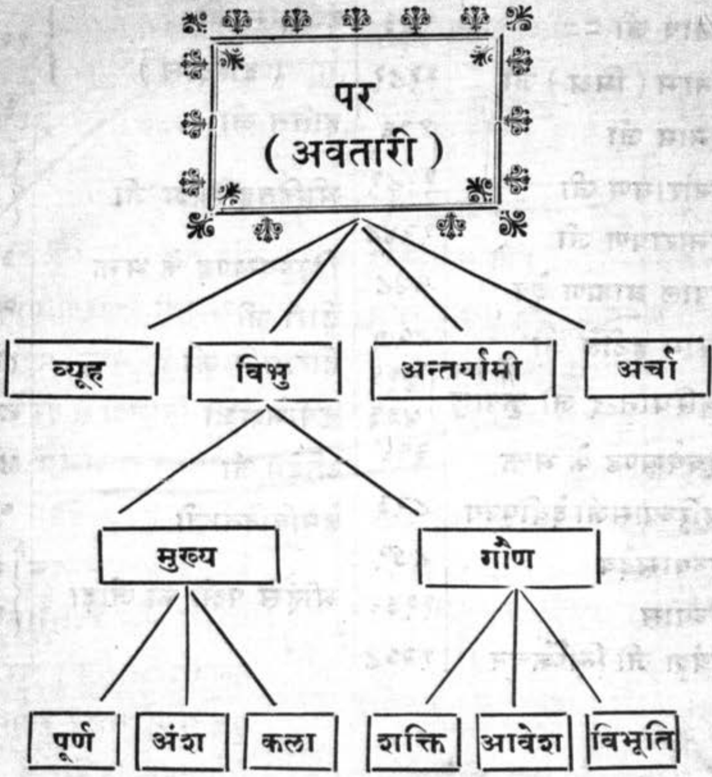
उपक्रमणिका,

वा

श्रीभक्तनामावली।

गोविन्द देव नारायण शरण, B. A.

(पृष्ठ ५८ मूल ५ छप्पय १ देखिये)



Dr. Grierson's "Gleanings * from the Bhakta Mala."


Thanks

* इस पुस्तक को देखना चाहिये ॥

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीश्यामनायकायै नमः । श्रीहंसकलायै नमः ॥

भक्तगुण ।

बाबू जानकीशरण खेदनलाल लिखित ।

"सुनु मुनि सन्तन के गुण जेते ।
कहि न सकहिं शारद श्रुति तेते ॥"

(१) भगवत नाम, मन्त्र, जाप
(२) भगवतपद्कंज स्मरण
(३) श्रीगुरुहरि पदपङ्क में परा-अनुरक्ति
(४) भागवतों (भक्तों) की सेवा
(५) भगवत धाम में निवास
(६) श्रीअयोध्या जी में प्रेम
(७) हरिलीला कथा श्रवण
(८) हरियश स्तुति कीर्तन
(९) भक्तों के यश कीर्त्तन
(१०) श्रीरूप का ध्यान
(११) सादर लीलादर्शन
(१२) सादर भक्तपदवन्दन
(१३) ऊर्द्ध पुण्ड तिलक करना
(१४) कण्ठी धारण (वैष्णववेष)
(१५) माला (सुमिरनी) फेरनी
(१६) भगवदायुध छाप धारण
(१७) प्रपत्ति शरण सूचक नाम
(१८) प्रपन्नता (शरणागति)
(१९) भागवत (भक्त) पद प्रेम
(२०) भगवत विमुखों से दूर रहना
(२१) कुसमाज से अलग रहना
(२२) बैरी से बैर तजना
(२३) वैष्णव भक्तसन्त का संग
(२४) विराग और उदासीन वृत्ति
(२५) भगवत भागवत चरणामृत पान सादर सप्रेम
(२६) श्रीमहाप्रसाद सेवन
(२७) शृङ्गारआदिक रस निष्ठा
(२८) जगत को निज प्रभुमय देखना मन क्रम वचन से
(२९) भागवतधर्मों का मनन
(३०) भजन, कैंकर्य्य, दास्य, सेवा
(३१) भगवत आस विश्वास
(३२) केवल एक भगवत आस और भरोस

(३३) आत्मनिवेदन सर्व समर्पण
(३४) जगत जाल का समेटना
(३५) परनिन्दा, परदोष, तजना
(३६) छल कपट कुटिलाई का त्याग
(३७) सरलता, सुशीलता, सत्य-व्यापार से भूषित होना
(३८) मितभाषिता और मिष्ट भाषण, मौन (चुप)
(३९) दीनता, नम्रता (वस्तुतः), विनय, कार्पण्य
(४०) मद, मान, अभिमान छोड़ना (मन वचन कर्म से)
(४१) क्रोध छोड़ना, क्षमा और सहनशीलता धारण करनी
(४२) लोभ से बचना, और सन्तोष धारण; प्रसन्नता
(४३) बिषयवासना त्याग, निष्कामता, निर्मलता
(४४) परनारी को नागिनी सी देखना, कलंकमूलजानना
(४५) परवित्त को विषवत् जानना
(४६) दम्भ नहीं (मन कर्म वचन)
(४७) अहिंसा, कर्म मन बाणीसे
(४८) दया, करुणा, कृपा, छोह
(४९) सचा बर्त्ताव
(५०) सत्य वचन (प्रियकरके)
(५१) कुतर्क हीनता
(५२) मोह परित्याग
(५३) भक्ति पक्ष का आश्रय
(५४) शोच विचार विवेक
(५५) अनघता, पाप से डर
(५६) जितेन्द्रियता और मित-भोगिता धर्मानुकूल
(५७) मानदता अर्थात् औरों को मान देना कर्म वच मन
(५८) धीरता गम्भीरता भारीपन
(५९) विगत सन्देह होना
(६०) पर गुण सुनकर हर्षित होना
(६१) सब पर समदृष्टि, समता
(६२) भागवत व्रत किया करना
(६३।६५) दम; नियम और संयम
(६६) मृत्युकाल को न भूलना
(६७) अमूल्य समय को न खोना
(६८) श्रद्धा (६९) अमाया
(७०) कुपथ को छोड़ना
(७१।७२) सुपथ चलना और चलाना

Thanks

(७३) दास्यनिष्ठा
(७४) शृङ्गारनिष्ठा
(७५) निर्जन एकान्तप्रियता
(७६) माधुर्य्य ऐश्वर्य्य, दोनों
(७७) सख्य निष्ठा
(७८) सौहार्द निष्ठा
(७९) वात्सल्य निष्ठा
(८०) अपने को जगत्पिता माता का पुत्र मानना
(८१) भजन में चित्त अचंचल, तथा मन को स्वाद और आनन्द आना
(८२) पवित्रता, शौच, शुद्ध-अन्तः करण होना
(८३) अल्पाहार, बिना भूख के भोजन न करना
(८४) शील, उदारता, दान, परहित
(८५) अपने दूषणों, अपराधों, और दोषों को समझना उनपर ग्लानी लज्या भय और पश्चात्ताप करना
(८६) सन्ध्या, अर्द्धरात्रि और ब्रह्ममुहूर्त्त को भगवत पद चिन्तवन ध्यान में अवश्य सुरति को लगाना
(८७) श्रवण, नयन, रसना और मन को विशेषतः रोकना
(८८) अन्तः करण को भगवत बिन अन्य किसी में रमने न देना
(८९) कर्म इन्द्रियां जो कर्म करें उसमें अन्तःकरणको लगने न देना स्वांस न खोना
(९०) भगवत कृपाओं को समझना और धन्यवाद करना गुण गाना
(९१) प्रियतम प्रभु से बातें किया करना
(९२) अपने तईं भजन पूजा वा किसी सुकर्म का कर्त्ता न जान्ना
(९३) निद्रा, आलस्य, प्रमाद, असावधानता त्याग, स्मरण भजन सतसंग में रमना
(९४) श्रीगुरु भगवत और भागवतों के सामने जो काम न किया चाहें उसको कदापि न करना
(९५) मरने की घड़ी जिसकी ओर चित्त जाना भला समझा जाता है उसी ओर सदा मन चित्त लगाना
(९६) इस घड़ी के कृत्य कर्तव्य को भविष्य पर न उठा रखना
(९७) मत्सर तज, अपने सरिस औरों के लिये चाहना
(९८) अहंता ममता मैं मोर हम हमार तजके, जो कुछ

जानते हैं उसको चरितार्थ करना, आचरण में
(९९) अष्टयाम मानस भावना
(१००) सुरति सदैव अचल वहीं
(१०१) गुप्त जाप और उच्च स्वर से भी नामोच्चारण करना
(१०२) अभ्यास, जतन, श्रम
(१०३) शान्ति, निर्द्वन्द्वता, विरति
(१०४) प्रेमदशा, जैसे गद्गद वचन सजल नयन &c. इत्यादि
(१०५) विप्रचरण अति प्रीति॥
(१०६) श्रीसरयू गंगा यमुना महिमा

(१०७) कवित्त–'श्रद्धा' ई फुलेल औ उबटनौ 'सरवन कथा' मैल अभिमान, अंग अंगनि छुड़ाइये। 'मनन' सुनीर, अन्हवाइ अंगुछाइ 'दया' 'नवनि' वसन, 'पन' सोंधो, लै लगाइये॥ आभरन 'नाम' 'हरि' 'साधुसेवा' कर्णफूल, 'मानसी' सुनथ, 'संग' अंजन, बनाइये। "भक्ति महारानी" को सिंगार चारु, बीरी 'चाह', रहै जो निहारि लहै लाल प्यारी गाइये॥ १॥

बड़े भक्तिमान, निशिदिन गुणगान करैं, हरैं जगताप, जापहियो परिपूर है। जानि सुखमानी हरि सन्त सनमान सचे, बचेऊ जगत रीति, प्रीति, जानी मूर है॥ तऊ दुराराध्य, कोऊ कैसे कै अराधि सकै, समझो न जात, मन कंप भयो चूर है। शोभित तिलक भल, माल उर राजै, ऐपै 'बिना भक्तमाल भक्ति रूप अति दूर है'॥ २॥

(१०८) श्रीभक्तमाल, श्रीभागवत, श्रीनारदभक्तिसूत्र, श्रीराम चरित मानस, श्रीजानकीस्तवराज, श्रीरामस्तवराज, भगवद्गीता श्रीवाल्मीकीय रामायण, &c. &c., इत्यादि को पाठ करना तथा सुनना सुनाना॥

(चौपाई)

एवमादि हरिजन गुण जेते। कहि न सकहिं श्रुति शारद तेते॥
जलसीकर महिरज गनिजाहीं। हरिजनगुण नहिं बरनि सिराहीं॥

इति श्री सियसहचरी नारायणदास (नाभास्वामी) कृत श्रीभक्तमाल की उपक्रमणिका॥

१९६६ } दीन जानकीशरण खेदनलाल

॥ श्रीः ॥

श्रीसीतारामकृपा से निम्नलिखित सज्जनों का यह दीन बड़ा कृतज्ञ है कि जिनके ग्रन्थों से बड़ी सहायता मिली हैः—

१.	श्रीप्रियादास जी कृपालु	भक्तिरसबोधिनी	१७६९
२.	श्रीतपस्वीरामजीसी०रा०	रमूज़े मेह्र व वफ़ा	१९३४
३.	श्रीवैष्णवदासजीवृन्दावनीय	टिप्पनी, श्रीवेंकटेश्वर	१८००
४.	श्रीतुलसीराम जी साहिब	भक्तिप्रदीप	१९११
५.	पं० श्रीज्वालाप्र० मिश्र जी	हरिभक्तिप्रकाशिका, वें०	१९५६
६.	Dr. G. A. Grierson, C. I. E., M. R. A. S.	Gleanings from Bhakta Mal	१९६६
७.	श्रीप्रतापसिंह जी	भक्तकल्पद्रुम	१९५८
८.	राजा श्रीरघुराजसिंह जी	रामरसिकावली, वें०	१९२१
९.	श्रीयुगलप्रिया जी	रसिकभक्तमाला	१९२५
१०.	श्रीहरिश्चन्द्रजी, भा०	भक्तमाल छप्पय	१९३०
११.	श्रीध्रुवदास जी	भक्तनामावली	—
१२.	श्रीराधाकृष्णदास	नामावली	१९५८
१३.	श्रीकीर्त्तिसिंह जी	गुरुमुखी भक्तमाल	—
१४.	मु० गुमानीलाल	फ़ारसी भ० मा०	१८९८
१५.	लालचन्द्र जी	भक्तउरबसी	१८००
१६.	पं० श्रीभानुप्रतापतिवारीजी	भ०मा०(चनार, मिर्ज़ापूर)	१९६५

दीन सीताराम शरण भगवान् प्रसाद

॥ श्रीः ॥

(सन्त अवतार सम राम भगवन्त के)

क०। जैसे प्रभु मानुष वपुष धरि लीला करैं, तैसे सुखशीला है चरित सब सन्तके । सठन की सिला सम कुमति सुशीला करैं, भंजैं भवचाप ज्यों कुदोष जे दुरन्त के ॥ बिमल बचन धनु वान हीं ते जातुधान काम कोह लोभ मोह मारैं उर अन्तके। चारौ जुग जीवन उधारकारी "रसराम" सन्त अवतार सम राम भगवन्त के ॥ १ ॥ (सन्त बिन कैसे कोऊ जानै भगवन्त को)। क०। माया को देखाय कै छिपाय भगवन्त जब तब सन्त बुद्धिसौं बतावत अनन्त को। धारैं भगवन्त जब मानुष वपुष तब सन्त भगवन्त कहि गावैं रसवन्त को ॥ ईश्वर न कोई जीव नश्वर कुवादी कहैं तिन्हैं सन्त जीति वाद थापैं सीताकन्तको । नाम को सुनाय के जनावैं रसराम रूप सन्त बिन कैसे कोऊ जानै भगवन्त को ॥ २ ॥ क०। नाम रूप लीला धाम निष्ठा रसरंगमनी भनी नौधा भक्ति परा प्रेमा रस पांच है। गाई है सँचाई भरी कथा सन्त सेविन की जिनको सुनत साधु सेवा मन रांच है ॥ प्रेमिन को पूरो प्रेम नेमिन को नेह नेम कान कौ करत मिटै मद मान आंच है। पागि प्रीति आभा दियो नाभा जू अलभ्य लाभा भाष्यो भक्तमाल मध्य भक्तिरूप सांच है॥ ३ ॥ दोहा—भवसागर भवरत्न बहु भक्त सु तिनकी माल ॥ नाभा जू आभा भरी, अर्पे हरिहिं विशाल ॥ १ ॥ हरि भक्तनि हिय वीस धरे, माला कंठ अमोल॥ धन्य सुजन रसरङ्गमणि वाचहिं सुनहिं अमोल॥२॥

॥ श्रीः ॥

श्री श्यामनायकायै नमः । श्री हंसकल्यायै नमः ॥

☞ आरा शाहाबाद के वकील बाबू ब्रजनन्दनसहाय (ब्रजबल्लभ) लिखित ।

गोस्वामि श्री १०८ नारायणदास जी
(श्री १०८ नाभा स्वामी)

(दो०) भक्तमाल आचार्य्यवर, श्री नाभा पद कंज ।
भवसागर दृढ़ नाव बड़, बन्दौं मङ्गल पुंज ॥ १ ॥
"श्री नाभा नभ उदित ससि, भक्तमाल सो जान ।
रसिक अनन्य चकोर ह्वै, पान करैं रसखान" ॥२॥

(छप्पै) "कमलनाभ अज विष्णुके, त्यों अग्र नाभ नाभा भयो ॥
उन हरि आज्ञा पाय सकल ब्रह्माड उपायो ।
इन गुरु आज्ञा पाय भक्त निर्णय को गायो ॥
चार युगन के भक्त गुणन की गूंथी माला ।
अंगहि अंग विचित्र बनी जू परम रसाला ॥
लघुमोहन अचर कहा, सीतापति जापै जयो ।
कमलनाभ अज विष्णुके, त्यों अग्रनाभ नाभा भयो ३

(क०) नाभा जू विसाल बुद्धि आज्ञा अग्र धारि सिर, विरचे कराल शास्त्र काटन को भ्रम जाल । पढ़त अनन्द बाढ़े रसिक सु भक्त हिये, सरल मनोहर सुखद कविता रसाल॥भने ब्रजवल्लभ अविद्या कर अन्धकार

करे दूर, सन्तन को सहज करे निहाल। प्रेम दीप बारे उर, पतित उधारे कोटि, काग ते मराल करे, सांची ऐसी भक्तमाल ॥ ४ ॥

(स०) भक्तन को यश पुंज बिटोर सु नाभा अलौकिक माला बनाये। ताकर टीको कियो प्रियादास जू सन्तन को अति ही मन भायो ॥ त्यों ब्रजवल्लभ रूपकला सिय किंकरि 'भाश' अनूप लगायो। "भक्त सुधा विंदु स्वाद" ललाम सु प्रेमिन को मन मोद बढ़ायो ॥ ५ ॥

(सं०) चारु सरोज सो छप्पै सुहावन सन्तन को मन भृङ्ग लुभायो। सादर पान करे रसको ज्यों चकोर मयङ्क के नेह भुलायो ॥ प्रेम पराग को त्यों ब्रजवल्लभ गन्ध मनोहर है जग छायो। पावनि भक्तन को गुन गाथ की माला अनूपम नाभा बनायो ॥ ६ ॥

(दो०) "भक्त नारायण भक्त सब, धरे हिये दृढ प्रीति।
बरने आछी भांति सो, जैसी जाकी रीति ॥"

("श्रीहनुमत जन्म विलास" में नामानुरागी मुन्शी रामअम्बे सहाय जी ने लिखा है कि–)

। चौपाई ।

"एक दिवस, हरि हरिरस पागे। योगाभ्यास करन तहँ लागे॥

नैन मूंदि बैठे गुणसागर। तपानघनि कपिवंश दिवाकर॥
बह्यो प्रस्वेद शरम अति कीन्हा। गुप्तभेव गिरिनायक चीन्हा॥
सो श्रमबिन्दु ईश गहि लीन्ही। जगतारनकी इच्छा कीन्ही॥
शिवानाथ तेहि राख्यो गोई। यह प्रसङ्ग जाना नहिं कोई॥
हे मुनिगण! हे तपबलरासा! यहां भविष्य सुनो इतिहासा॥
ह्वैहै जब कलिकर परचारा। छीजै भक्तिभाव आचारा॥
तब गिरीश सो बिन्दु सुहाई। नभमग तजिहिं देव सुखदाई॥
(दोहा) गहै भूमि बरबिन्दु सो, हरि जन काज बिचार।
उपजै ताते रूप शुभ, भक्ति योग आगार॥
नैन मूंदि बैठे कपी, यहिते होइ अनैन।
"हनुमतवंशी" विमल मति, योग भक्ति तप ऐन॥
सो अयोनिजा, योगधन, जाको वर्ण न ज्ञात।
स्वयं सिद्ध, पातक विगत, जग में हो विख्यात॥
'भक्तमाल' अद्भुत रचै, पूरै जन मन काम।
'नाभा, नाभा' सब कहैं, 'नभोभूज' हो नाम॥"

स्वामी अनन्तश्री रामानन्द जी महाप्रभु के प्रशिष्य तथा श्रीअनन्तानन्द जी के शिष्य श्रीकृष्णदास पैहारी जी के कृपापात्र स्वामी श्री १०८ अग्रदास जी तथा श्रीकील्ह जी ने एक दिन किसी वन के मध्य मार्ग में एक पांच वर्ष के अन्धे बालक को देखा, जिसके माता पिता कौन थे सो कैसे जाना जाय? पर यह निश्चय होता है कि महाघोर अकाल के कारण उन्होंने उन्हे अनाथ छोड़कर चल देने

का साहस किया अतएव निर्दयी कहलाना अङ्गीकार किया।

महात्माओं ने उन्हें वानर वा हनुमान वंशीय लिखा है और महाराष्ट्र वा लांगूली ब्राह्मण श्रीरामदास जी के भाई के वंश में उनका उद्भव वर्णन किया है; किसी किसी ने उन्हे 'डोम' जाति का लिखा है, जो जाति उस देश में उत्तम भाट, चारण, तथा कत्थक की सी है (इधर का सा नीच बँसफोड़ डोम नहीं); किसी महात्मा ने उन्हे अयोनिजा लिखा है और श्रीहनुमान जी का अंशावतार बताया है। किसी ने ब्रह्मा जी के अवतार श्रीलाखा भक्त की जाति का कहा है। (पृष्ठ ५१।५६ देखिये) अस्तु, श्रीहरि भक्तों की जाति पांति वक्तव्य नहीं है।

उक्त दोनों महानुभाव वहां रुके। असहाय बालक देख उन्हे "लागि दया कोमल चित संता" अतएव उनलोगों ने कृपा दृष्टि की। सच कहा है "सन्त विशुद्ध मिलहिं परि ताही। चितवहिं राम कृपा करि जाही॥" दोनों महानुभाव ने पूछा "बालक! तुम कौन हो?" उत्तर मिला "महाराज! आप इस पंचभूत रचित क्षणभंगुर शरीर को पूछते हैं? वा परमात्मा के करुणापात्र अविनाशी जीवात्मा को?" (पाठक! होनहार विरवान के होत चीकने पात)। "शारद दारु नारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अन्तर्यामी।"

उक्त महानुभावों ने उन पर श्रीहरि कृपा होने वाली समझ, अपने कमण्डलु के जल के छींटे से बालक की आंखों में ज्योतिप्रदान किया। और अपनी "गलता" गादी

में लाकर श्रीराम कृपा से सन्तों की सीथ प्रसादी तथा चरणामृत पाने को बताकर, भजन के समय पंखा करने की सेवा दी, नारायणदास 'नाभा' पुकारे जाने लगे। सन्तों के चरणोदक तथा सीथ प्रसादी से जो पाला जाय एवम् महानुभाव की सेवा कैंकर्य्य का सौभाग्य जिसको हो उस भागवतकृपापात्र महाभाग्यभाजन का कहना ही क्या है। ऐसे भागवत कृपा की जय तथा हरि कृपा की बलिहारी!

एक समय श्रीअग्रस्वामी जी मानसी भावना में निमग्न थे, और आप (श्री ६ नाभा जी) नियमानुसार पंखा झल रहे थे। इतने में श्रीस्वामी जी महाराज के एक चेले ने, (जो समुद्र पर एक जहाज में जा रहा था) जहाज के रुक जाने से विकल हो आरत वाणी से पुकारते हुए, श्रीअग्रदेव महाराज का ध्यान किया। श्रीराम कृपा भाजन नाभा जी अपने महा प्रभु जी की अनुपम रहस्य श्री सेवा में यों विघ्न आ पड़ना सह न सके; कृपा पूर्वक उसी पंखे के वायु बल से उन्होंने जहाज को चला दिया; और श्री महाराज जी से प्रार्थना की कि प्रभो! दीनबन्धो! वह बोहित तो आपकी कृपा से ही आपदा से बचकर कहीं का कहीं निकल गया और दूर जा रहा; अब आप, अपने श्री चित्त को उधर न ले जाकर, शान्ति पूर्वक स्वकार्य्य में तत्पर रहें और पुनः उसी अनुपम भावना में लगें। यह सुन नेत्र उघार उनकी ओर निहार, श्रीस्वामी जी ने पूछा "कौन बोला?" आपने श्री १०८ नाभा जी ने) हाथ जोड़ विनय किया और कहा कि

"नाथ! वही शरणागत बालक, जिसे आपने शीथ प्रसाद से कृपा पूर्वक पाला है।"

इतना सुनते ही आप नवीन आश्चर्य में आकर विचारने लगे कि "भगवत् भागवत् कृपा से इसकी यहां तक पहुँच हो गयी!" और साथ ही श्रीस्वामी जी के मन में आनन्द भी छा गया कि अपना लगाया वृक्ष यों फूलने फलने लगा।

श्री १०८ अग्रदेव जी ने आपके हाथ से पंखा ले लिया और यह आज्ञा दी कि "वत्स! तुझ पर भक्तों सन्तों का अनुग्रह और प्रभाव हुआ; अतः तू श्रीहरिभक्तों का चरित्र गान कर।"

आपने सादर निवेदन किया "प्रभो! भगवद्गुण तो उलटा सीधा गा लेना इतना कठिन नहीं है, पर भागवतों का यश वर्णन करना तो महा कठिन है।" श्री १०८ स्वामी जी महाराज ने समझाया कि "पुत्र! जिनने तुझे सागर में बोहित और मेरे हृदय में श्रीस्वरूप दिखा दिया, वे ही तुझे अपना तथा और और महानुभावों का अलौकिक एवम् पवित्र चरित्र दिखा देंगे। सो तू अब भागवत यश कह ही चल।"

ऐसा वर्दानात्मक श्रीवचन सुनके आप उद्यत होगये। और आपने "श्रीभक्तमाल" को २१४ छन्दों में रच डाला। जिसमें चारों युगों के भक्तों का पुनीत यश वर्णित है।

श्रीकान्हरदास जी के भण्डारे महामहोत्सव में (पृष्ठ १२०२।१३०८) सम्वत १६५२ में बहुत महानुभाव इकट्ठे थे। वहीं सबों ने मिलकर आपको "गोस्वामी" की पदवी दी।

श्रीभक्तमाल जी*का बनना विज्ञजनों ने ("सम्वत १६३१ के पीछे और सम्वत १६८० के पहले"), १६४९ के लगभग निश्चय किया है। आपके परम धाम गमन का समय महात्माओं से १७१९ सुना गया है। श्रीप्रियादास जी ने जो श्रीनाभा स्वामी जीकी आज्ञा से १७६९ में टीका बनाई; वह आज्ञा, (महात्माओं से यह सुना है कि) (पचास वर्ष पीछे) "स्वप्न में हुई थी।"

श्रीभक्तमाल ग्रन्थ की प्रशंसा किस से हो सकती है। इस के विषय में जो कुछ कहा जाय वह थोड़ा ही है। "बिना 'भक्तमाल' भक्तिमणि अति दूर है'।" एक तो इस में भक्तों की गुणावली है (दो०) सब सन्तन निर्णय कियो, श्रुति, पुराण, इतिहास। भजबेको द्वौ सुघर हैं, की हरि, की हरि दास"; तिसपर इसके रचयिता स्वयम् परम भक्त ठहरे।

पद्य होने के कारण श्री प्रियादास जी की टीका सर्वसाधारण की समझ में नहीं आती थी अतएव श्री सीताराम शरण भगवान् प्रसाद जी ने सन्त चरित जानने की सुगमता के लिये तथा अपने आनन्द के निमित्त गद्य में "भक्तिसुधाबिन्दु स्वाद" नामक तिलक लिखा है। यह पुस्तक अपने नामके अनुसार ठीक बनी है तथा पाठकों के हृदय में पीयूषधारा प्रवाहित करती है। इस में सन्देह नहीं। भक्ति तथा प्रेम की जय मनाता हुआ मैं इस प्रबन्ध को समाप्त करता हूं।

(* दोहे १७, कुंडलिया १, छप्पै १९६ कुल छन्द २१४)

आरा, शाहाबाद। व्रजनन्दन सहाय (व्रजवल्लभ)

॥ श्रीः ॥

श्रीप्रमोदवन बड़ी कुटिया के साकेतवासी महानुभाव स्वामी श्री १०८ रामचरणदास जी महाराज के शिष्य

पण्डित श्री५ रामहितोपाध्याय जी लिखित।

श्रीसीतारामकृपा से सम्वत १९६५ के वसन्त ऋतु में श्रीमद्भक्तमाल की कथा, श्रीजानकीघाट मणिराम जी की छावनी में, परम योग्य महानुभाव श्री५ रामवल्लभाशरण जी महाराज ने कही। श्रोताओं की जो महा भीड़ होती थी कही नहीं जा सकती। प्रायः सब महात्मा पहुँचते थे।

एक तो महाभागवतों के चमत्कृत सुयश की कथामाला, दूसरे परम प्रेमी महानुभाव पण्डितवर प्रभावयुक्त वक्ता की अनूठी वक्तृता, तिस्पर आपका वह प्रियतर महामधुर स्वर; भला वह समाज सुख लिखने में कहां आसकताहै? सच है कि "गिरा के श्रवण नहीं और कानों के वाणी नहीं"।

हां, जिन भाग्यभाजन ने ग्वालियर लश्कर के श्रीपुरुषोत्तमभट्ट जी के मुखारविन्द से श्रीभागवत कभी सुनी होगी, वेही विवेकी रसिक जन इस पियूष प्रवाह के अलौकिक स्वाद को भी कुछ समझ सकते हैं, वा जिन श्रीकृपाभाजन को स्वतः अनुभव हुवा।

इस समाज के सुख की वार्त्ता श्रीअयोध्या जी के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी जब तक कि श्रीसरयूमहारानी जी की धारा॥

श्रीअयोध्याप्रमोदवन १९६६ रामहितोपाध्याय

॥ श्रीः ॥

श्रीभक्तमाल सटीक ।

(भक्तिसुधास्वाद तिलक सहित)



श्रीगणेशायनमः। श्रीसरस्वत्यैनमः

विषय वर्णन

१	२	३	४	५
	श्रीप्राचीनबर्ही जी	७८		२२७
	श्रीसत्यव्रत जी	७९		२२८
	श्रीमिथिलेश जी	८०		२२९
	राजा नीलध्वज	८१		२२९
	श्रीरहुगण जी	८२		२३०
	श्रीसगर जी	८३		२३१
	श्रीभगीरथ जी	८४		२३२
	श्री रुक्माङ्गद जी	८५	८३	२३३
	श्रीरुक्माङ्गदसुता जी	८६	८५	२३६
	श्रीहरिश्चन्द्र जी	८७		२३८
	श्रीसुरथ जी	८८		२४०
	श्री सुधन्वा जी	८९		२४०
	राजा श्रीशिवि जी	९०		२४३
	श्रीभरत जी (जिससे " भरतखंड ")	९१		२४४
	श्रीदधीचि जी	९२		२४६
	श्रीविन्ध्यावली जी	९३	८७	२४७
	श्रीमयूरध्वज जी, श्रीताम्रध्वज	{ ९४ ९५	८८	२४९
	श्रीअलर्क जी	९६	९३	२५६
१२	श्रीरन्तिदेव जी	९७	९४	२६१
	श्रीगुहनिषाद जी	९८	९५	२६२
	श्रीऋभु जी	९९		२६९
	श्रीइक्ष्वाकु जी	१००		२७१

इति श्रीभक्तमाल के सत्य-युग त्रेता द्वापर के भक्तों के नामों की उपक्रमणिका

☞ सतयुग, त्रेता और द्वापर के ३८० भक्तों के नाम २७ वें मूल, और १२५ वें कवित्त तक हैं और उनमें से १८० का वर्णन भी ॥

मूल	२७
टीकाकवित्त	१०५
	=१३२

पृष्ठ २७३ तक

किस मूल में कितने ?

मूल	भक्त	वर्णन	मूल	भक्त	वर्णन
१।२ ३।४	मंगलाचरण	....	१७	१८	१
५	अवतार	....	१८	३६	१
६	श्रीचरण चिन्ह	....	१९	८	२
७	१२	१२+१	२०	१८	५
८	१६	१	२१	१०	१
९	४४	२६	२२	२०	५
१०	३०	२०	२३	१६	१
११	२१	२१	२४	७	१
१२	४३	३०	२५	९	१
१३	११	१०	२६	१	१+१
१४	९	८	२७	८	१
१५	१६	१			
१६	२७	२७+२	जोड़	३८०	१८०

और

२८ वें मूल पृष्ठ ३७५ से १२६ वें कवित्त से

कलियुग प्रारंभ ॥

अथ कलियुग के भक्तः-

किस मूल में कितने ?

मूल	भक्त	वर्णन
कलियुग २८।२९ ३०।३१	१३	४
३१।३२	५	५
३४	२	२
३५।३६	३०	१७
३७।३८	८	८
३९।४१	२३	३
४२	१	१
४३	१	१
४४	१	१+१
४५	२	२
४६	१	१
४७	१	१
४८	४	३
४९	३	३

तीसरी माला पृष्ठ ५७८ तक।

मूल	भक्त	वर्णन
५०	६	६
५१	४	४
५२	६	६
५३	३	३
५४	४	४
५५	२	२
५६	१	१
५७	२	२
५८	२	२
५९	१	१
६०	१	१
६१	१	१
६२	१	१
६३	१	१
६४	१	१
६५	१	१
६६	१	१
६७	२	२
६८	१	१
६९	२	२

मूल	भक्त	वर्णन	मूल	भक्त	वर्णन
७०	१	१	९३	१	१
७१	१	१	९४	१४	९
७२	२	२	९५	१	१
७३	१	१	९६	१८	२
७४	१	१	९७	१७	३
७५	१	१	९८	१८	३
७६	१	१	९९	२७	१
७७	१	१	१००	२६	१
७८	१	१	१०१	१४	१
७९	१	१+१	१०२	१६	१
८०।८१	७	२	१०३	२१	२
८२	३	२	१०४	२९	१
८३	१	१	१०५	२२	१
८४	१	१	१०६	९	१
८५	१	१	१०७	१	१
८६	१	१	१०८	१	१
८७	१	१	१०९	१	१
८८	१	१	११०	१	१
८९	२	२	१११	१	१
९०	१	१	११२	१	१
९१	१	१	११३	१	१
९२	१	१	११४	१	१

मूल	भक्त	वर्णन	मूल	भक्त	वर्णन
११५	१	१	१३७	१	१
११६	१	१	१३८	१	१
११७	१२	२	१३९	१५	३
११८	१	१	१४०	१	१
११९	१	१	१४१	१	१
१२०	१	१	१४२	१	१
१२१ }	१	१	१४३	१	१
१२२ }			१४४	१	१
१२३	१	१	१४५	१	१
१२४	१	१	१४६	२२	१
१२५	१	१	१४७	२३	१
१२६	१	१	१४८		१
१२७	१	१	१४९	१३	१
१२८	१	१	१५०	१६	} १
१२९	१	१	१५१	९	}
१३०	१	१	१५२	१	१
१३१	१	१	१५३	१	१
१३२	१	१	१५४	१	१
१३३	१	१	१५५	१	१
१३४	१	१	१५६	१	१
१३५	१	१	१५७	२	२
१३६	१	१	१५८	१०	१

मूल	भक्त	वर्णन	मूल	भक्त	वर्णन
१५९	१	१	१८०	१	१
१६०	१	१	१८१	८	१
१६१	१	१	१८२	१	१
१६२	१	१	१८३	१	१
१६३	१	१	१८४	१	१
१६४	१	१	१८५	१	१
१६५	१	१	१८६	१	१
१६६	१	१	१८७	१	१
१६७	१	१	१८८	१	१
१६८	१	१	१८९	१	१
१६९	८	} १	१९०	२	२
१७०	२१		१९१	१	१
१७१	१	१	१९२	१	१
१७२	१	१	१९३	१	१
१७३	१	१	१९४	१	१
१७४	१	१	१९५	१	१
१७५	१	१	१९६	१	१
१७६	१	१	१९७	१	१+१
१७७	१	१	१९८	२	२
१७८	८	१	१९९	१	१
१७९	१	१	२०० } २१४	मंगलाचरण समाप्ति।	

Registered:

Under Act XXV of 1867;

(Office of the Registrar & Superintendent, Govt. Book Depot, United Provinces, Allahabad)

Volume I. C. P. Press, 1903. pp. 192. मूल ९ टीका ७२ तक
= No. 682 Dated 1st. July 1905;

Volume II. C. P. Press, 1904. pp. 373. मूल २७ टीका १०५ तक
= No. 1468 Dated 6th. December 1904;

Volume III. C. P. Press, 1905. pp. 578. मूल ४९ टीका १९२ तक
= No. 203 Dated 16th. February 1906;

Volume IV. (1st. half)
C. P. Press, 1907. pp. 836. मूल ७९ टीका ३४३ तक
= No. 330 Dated 15th. March 1909;

Volume IV. (2nd. half)
H. C. Press, 1908. pp. 1116. मूल १२९ टीका ५१८ तक
= No. 331 Dated 15th. March 1909;

Volume V. (the last)
H. C. Press, 1909. pp. 1332. मूल. २१४ टीका ६३४ तक
= No. 229 Dated 28 January/10

श्रीसूरदास जी	८१२	दधीच जी	२४६
श्रीसुखानन्द जी	७६९	श्रीबलि जी	{ ९१ ३०१
(२३) उपास, व्रत २ भक्त		श्रीभीष्म जी	९०
श्रीअम्बरीष जी	१२६	सुरथजी, सुधन्वा जी	२४०
श्रीरुकमांगद	२३३	सुधनवा, सुरथ	२४०
धर्म कर्म निष्ठा, ७ भक्त		श्रीहरिश्चन्द्र जी	२३८
श्री१०८दशरथजी चक्रवर्ती	२०१	चौबीस का जोड़	२६९

इन चौबीस निष्ठाओं में जो २६९ लिखे गए
उनके अतिरिक्त १३१ आगे लिखे जाते हैं।

श्रीअनन्तानन्द जी	४३५	श्रीऋचीकजी	३२२
श्रीआत्रि जी	३१७	श्रीऋभुजी	२६९
श्रीअनुसूया जी	३१७	श्रीऐल पुरूरवा	२७१
श्रीअल्ह जी	४४६	श्रीकर्मचन्द	४४६
श्रीअमूर्त्त जी	२७४	श्रीकर्दम जी	३१६
अनुगसखा (१६)	३५७	श्रीकश्यप जी	३३३
श्रीआकूती जी	२०३	श्रीकपिल जी	८६
श्रीअंगिराजी	३२५	श्रीकीर्ति जी	३५६
अंग जी	१९६	श्रीगाधि जी	२७२
श्रीइक्ष्वाकु जी	२७१	श्रीगर्ग जी	३१८
श्रीउतंक जी	२७४	श्री गौतम जी	३१९
श्रीउत्तानपाद जी	२८४	श्रीगोपाल जी	९६६
श्रीऋषिशृंग जी	{ ३२५ ३२९	श्रीगोकुलनाथ जी	८४६

छ०-रामसखा सीताशरण अवध नगर सर हंसबर ॥
प्रभु अनुराग बिराग निरत-गुरु शीलमणी पद।
रामलाल गुण रूप रसिक शुचि साधु सत्यबद ॥
प्रभु बिग्रह के बिरह बर्ष दुइ अन्न न पाए।
नामनिष्ठ अति नम्र राम उत्सव धन लाए ॥
आदि अन्त, रसरङ्गमणि, भक्तिरीति निर्बाह कर।
राम सखा सीताशरण अवध नगर सर हंसबर ॥१॥
मैं श्याम! तेरि मोहनि मूरत प वारि हूं।
तुम मेरे प्राण नाथ, मैं प्यारी तुम्हारि हूं ॥

हरितलता (पुरुषोत्तम शरण मारवाड़ी)

(दो०) सबै कहत "हम राम के," सबहिं आस, पिय! तोरि।
मैं बिनवौं, पिय! तुम कहहु, "रूपकला है मोरि" ॥

(रूपकला)

श्रीभक्तमाल में कितने भक्तों के नाम हैं?

युग	मूल	भक्त	वर्णन
सतयुग, त्रेता, द्वापर,	२७	३८०	१८०
कलि	१८७	६५०	२२०
सब का जोड़	२१४	१०३०	४००

इनमें से २६९ भक्तोंको २४ निष्ठाओं में मुन्शी तुलसीराम जी ने अपने भक्तमाल में वर्णन किया है—

निष्ठा	भक्त		
		दया, अहिंसा	६
श्रृंगार, माधुर्य्य	२०	श्रवण	४
सख्य	५	प्रतिमा, अर्चा	१७
वात्सल्य	१०	लीलामूर्त्तिनिष्ठा	६
सौहार्द	५	दास्य	१६
आत्मनिवेदन, शरण	१२	सेवा	१०
महाप्रसाद	४	वैराग्य, शान्ति	१४
प्रेम	१७	ज्ञान	१३
धाम	८	कीर्त्तन	१६
नाम	७	उपवास, व्रत	२
साधुसेवा, सत्संग	२९	धर्म, कर्म	७
भेष	८	चौबीसों का जोड़	२६९
गुरु निष्ठ	१२	इस से अधिक	१३१
धर्मप्रचारक	२१	सब का जोड़ चारसौ	४००

श्री भगवत् कृपा से श्री भक्तमाल जी के इस उपक्रमणिका में, पृष्ठ २ से ८ तक 'स्वामी श्रीनाभा जी महाराज की संक्षिप्त यशावली' आरा शाहाबाद के वकील बाबू ब्रजनन्दन सहाय जी की लिखी है; और, पृष्ठ ११ से १५ तक सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा पृष्ठ १७ से २१ तक कलियुग के भक्तों की नामावली (वा सूचीपत्र) उसी क्रमसे है जैसे श्री १०८ नाभा स्वामी और श्रीप्रियादास जी ने वर्णन किया है। पुनः पृष्ठ २७ से ३२½ तक भक्तों के नाम मुनशी तुलसीराम साहिब के भक्तप्रदीप अनुसार चौबीस निष्ठाओं में लिखे गये हैं। आगे, पृष्ठ ३९ में * तिलककार की संक्षिप्त जीवनी श्रीकनकभवन विहारी शरण ब्रजेन्द्र प्रसाद, M.A.,B.L., मुनासिफ़ की लिखी हुई है; और, पृष्ठ ४० से ४२ तक इस ग्रन्थ के प्रकाशक बाबू बलदेवनारायणसिंह जी वकील का कुछ जीवन वृत्तान्त संक्षिप्त दिया गया है।

(* सचित्र जीवनी बाबू श्री शिवनन्दन सहाय जी की लिखी हुई, १२५ पृष्ठ, मूल्य ।।। बारह आने, पटना बाँकीपूर खड्गविलास प्रेस से मिलती है।)

सारन, छपरा, १९६६ } गोविन्ददेवनारायणशरण, B. A.

श्रीसीताराम



श्रीरूपकला
(श्रीसीतारामशरण भगवान्प्रसाद)
श्रीभक्तमाल-तिलककार ।
प्रमोदवन श्रीअयोध्या जी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

श्रीसीतारामाभ्यांनमः।

श्रीहनुमतेनमः।

श्रीभक्तमाल के तिलककार की संक्षिप्त जीवनी।

स्वामी श्री १०८ रामचरणदास महाराज जी के शिष्य, श्रीवास्तवकायस्थ मुन्शी तपस्वीराम जी के आत्मज, सारन छपरा गवर्न्मेंट स्कूल के पढ़े, श्रीसीताराम शरण भगवान प्रसाद जी का विवाह संवत १९१४ (१८५७ई०) में हुआ, और ये सन १८६३ ईसवी में ३० रु० पर पटने के सब इन्स्पेक्टर-अफ़-स्कूल्स नियत हुए।

२. शाहाबाद, चम्पारन, सारन, मुज़फ़्फ़रपूर, दर्भंगा, इत्यादि जिलों में फिरने के अनन्तर, ये पूर्निया नार्मल स्कूल के हेडमास्टर ८० रु० पर नियत हुए; १८६७ में १०० रु० की डेपुटि इन्स्पेकटरी का पद पाकर मुँगेर भेजे गए; जहां प्रायः बारह वर्ष रहे; सन १८७८ से २०० रु० वेतन पानेलगे, और १८८१ में भागलपूर भेजे गए।

३. सन १८८४ में श्रीसीताराम कृपा से आपकी उन्नति ३०० रु० मासिक पर हुई। १८८६ में आप फिर पटने आए।

४. सम्वत १९४२ (१८८५ ई०) में आपके पिता जी का बैकुंठवास हुवा, और १९४७ (१८९० ई) में आपकी स्त्री का भी।

५. ३० (तीस) बर्ष से अधिक गवर्न्मेंट की नोकरी कर, सं० १९५० (१८९३ ई०) में काम छोड़, श्रीसीतारामकृपा से सीधे श्रीअयोध्या जी पहुँच, आपने वैराग्य धारण किया।

सं० १९५२ (१८९५ई०) में आपकी माताजी बैकुंठवासी हुईं

६. आप सन (१८९३ ई०) से श्री सीतारामकृपा का धन्यवाद गुणवाद गाते गवाते हुए, बराबर श्रीसरयू अयोध्याजी के शरण में बिराज रहे हैं॥

७. इस ग्रन्थ के प्रकाशक की भी कुछ थोड़ी सी जीवनी हम अपने पाठकों को सुनाए देते हैं—

८. श्री सीतामढ़ी बुलाक़ीपूर जिला मुज़फ़्फ़रपूर निवासी, ऐठाना कायस्थ बाबू मनोरथलाल जी के ज्येष्ठ पुत्र बाबूश्रीबलदेव नारायणसिंह जी का जन्म सम्वत १९१७ के फाल्गुण में हुआ। आपका विवाह मौज़े माली एलाके शिवहर जिला मुजफफरपूर के बाबू हनुमानप्रकाश सिंह जी की कन्या से हुआ। आपने मुजफफरपूर स्कूल से सन १८८२ में एनट्रेन्स पास किया।

९. मुजफफरपूर एक्सट्रा सब जज की कचहरी में, मुहर्रिरी के अनन्तर, पेशकारी पाई। सन १८८३ में गया अडिशनल सबजज के सर्रिश्तदार बहाल हुए १८८४ में वकालत की परीक्षा पास करके, १८८६ में नोकरी छोड़, तारीख ६ अगस्त से गया जी में वकालत करते हैं।

१०. गया जी में भी आपका एक उमदा मकान और बाटिका है आपके पुत्र नहीं परन्तु दो लड़कियां हैं। श्री रामकृपा से एक कन्या के पुत्र है जिसका नाम चिरंजीवी जानकी रघुनाथ प्रसाद है; इस कुमार की अवस्था अभी चार वर्ष की है।

११. आपके सहोद्र भ्राता बाबू श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह B. L. कलकत्ता हाईकोर्ट के वकील, आप से दो ढाई वर्ष छोटे हैं; संस्कृत अच्छी जानते हैं; आपके चार लड़के हैं और एक कन्या; दो बेटे कलकत्ते में पढ़ रहे हैं।

१२. आपके भानजे बाबू लालबहादुर जी गयाजी में मुहर्रिर हैं और बाबू नरेन्द्रनारायण जी, बड़े सुशील, कलकत्ते के एक प्रेस में हैं। दोनों वैष्णव हैं और इङ्गरेज़ी पढ़े हैं। आपके फुफेरे भाई लाला अच्युतानन्द जी चारोधाम से हो आके श्रीअयोध्या निवास करते हैं। आपके सरबेटे बाबू श्रीसियदेवनारायण सिंह जी, ज़मीदार, बड़े भक्त, भजनानन्द, रसिक और प्रेमी हैं, एन्ट्रेन्स तक आपने इंग्रेज़ी भी पढ़ी है, जिनके भाई बाबू उद्धव जी गया जी में मुनशी हैं, और ये सब महाशय वैष्णव हैं। आपके भांजे बाबू महेन्द्रकिशोर जी कलकत्ते में पढ़ते हैं। आपके एक संबन्धी बाबू रामगोविन्दशरण जी बड़े भगवद्भक्त, तिर्हुत में एक ट्रेनिंग स्कूलके हेड्मास्टर हैं। आपके जामात का नाम बाबू बासुदेव नारायण सिंह जी है। आपके भांजे बाबू हरिश्चन्द्र जी गयाजी ही में पढ़ते हैं।

१३. बाबू बलदेव नारायण सिंह जी, महात्मा श्रीरामनारायण सुकुल जी के शिष्य श्रीरामानन्दीय वैष्णव हैं; आपने तीर्थाटन भी किया है।

१४. बाबू बलदेवनारायणसिंह जी बड़े धर्मात्मा हैं और श्रीअयोध्याजी प्रति संवत्सर दो बार अवश्य आते हैं।

१५. श्रीअयोध्याजी प्रमोदवन में आपका एक सुन्दर "रूपकलाकुंज" नामक भवन है। ऐसे विवेकी, धर्म्मात्मा, उदार, प्रतापी और भगवद्भक्त की माता की प्रशंसा लिखने की आवश्यकता ही क्या; आपकी माताजी, जो चारो धाम से हो आई हैं, अब श्रीअयोध्या बास करती हैं। बड़ी बुद्धिमान तथा पुण्यात्मा हैं।

१६. भगवद्भक्तप्रिय ग्रन्थ इस सटीक सतिलकश्रीभक्तमाल के प्रकाशक आपही (श्रीबाबूबलदेवनारायणसिंह जी) हैं।

१७. सद्ग्रन्थों के इकट्ठे करने में आप की भारी श्रद्धा रहती है। श्रीसीतारामजी आपके सकल मनोरथ सफल करें॥

१८. जय जय जय जगजननी श्री जानकी, जय जय जगतपिता श्री रघुवंशमणि, जय युगल सर्कार की! आप से इस दीन बालक की प्रार्थना है कि आपके भक्तों का तथा आपका चरित सदा सप्रेम गाया करूं; यही बर दीजिये, और निरन्तर कृपा रखिये॥

क० वि० श० ब्रजेन्द्रप्रसाद (M. A., B. L.)

ऐक्टिङ्ग मुन्सिफ, फर्स्ट कोर्ट, कृष्णगंज, पूर्निया।

॥ श्रीः ॥

सांख्यसार ।

श्रीजानकीवल्लभाय नमः ।

(दो०) अद्भुत रचना राम की, नर तन अचरज गेह ।
खेल तत्त्व बत्तीस का, राम रचित नर देह ॥१॥
रचना रुचिर विचारि हिय, उपजत सहज सनेह ।
अन्तर्यामी राम लखि, कनकलता करु नेह ॥ २ ॥

बत्तिस[1] की है बनी यह काया, अन्तर्यामी[2], आत्मा[3], माया[4] ॥
अहंकार, बुद्धि, मन, चित्त । चारो अन्तःकरण हैं मित्त ॥
प्राण, अपान, उदान, समान । पंचम व्यान, पाँच हैं प्रान ॥
पंच स्थूल तत्त्व सुन तू । शून्य, समीर, तेज, जल, भू ॥
पंच कर्म इन्द्री के नाँव । हस्त, उपस्थ, गुदा, मुँह, पांव॥
पंच ज्ञान इन्द्री पहिचान । श्रोत्र, त्वचा, दृग, रसना, घ्रान॥
विषय पाँच कीन्हे जग अन्ध । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ॥
जीव नित्य, तुम जानो इसको । तुम मरते नहिं, मानो इसको॥
जीव देह दोनो दो कैसे । पक्षी पिंजड़ा देखिय जैसे ॥
पक्षी पिंजड़े का उड़ जावै । देह अनित्य नाश को पावै॥

---

१ तत्वों की गिनती में २२ से ३२ तक का भेद हुवा करता है, इस न्यूनाधिकता का कारण एक तत्व को दूसरे तत्व के भीतर गिन लेना है ।

२ अन्तर्यामी = पुरुषोत्तम, परब्रह्म, परमात्मा, परम तत्व, हृदयस्थहरि ।

३ आत्मा = पुरुष, जीवात्मा, हंस ।

४ माया = प्रकृति ।

अधम शरीर नहीं है अपना । सतहरिभजन जगतसबसपना ॥
जरै मरै नहिं जीव, तरै तब । सियापियपद रति होय हृदयजब।
(दो०) काल पुकारत सीस पर, जग जीवन दिन चार ।
कनकलता संसार महँ, राम भजन है सार ॥१॥
काम क्रोध मद मोह तजि, जो न भजै श्रीराम ।
पुनि पुनि आवै जाय जग, सो न लहै विश्राम ॥२॥
सकल सुखद भवभयहरण, सिय पिय राम सनेह ।
जाके हिय नहिं राम रति, ताके सिर पर खेह ॥३॥

श्रीअयोध्या जी, १९६६ कनकलता (S. K. D. N. Sinha)

(ग़ज़ल्)

लगी है लगन तुम से आवो सियावर ।
लगी आग तन की बुझावो सियावर ॥ १ ॥
समाई है आँखों में सूरत सलोनी ।
झलक अपनी मुझको दिखावो सियावर ॥ २ ॥
फ़िदा तेगे अबरू प है जान मेरी ।
शिकार् अपना मुझको बनावो सियावर ॥ ३ ॥
चलावो कोई तीर तिरछी नज़र की ।
कोई तेज़ नशतर लगावो सियावर ॥ ४ ॥
कहीं चश्म बद लग न जाये यह डर है ।
मेरे दिल के बाहर न जावो सियावर ॥ ५ ॥
शजर बे समर हूं तमन्ना है फल की ।
पिया प्रेम का फल लगावो सियावर ॥ ६ ॥

तुम्हारी कनक तुमसे यह माँगती है ।
मुझे अपनी जोगिन बनावो सियावर ॥७॥ (कनकलता)

॥ श्री सीतारामचन्द्राभ्यान्नमः ॥

(दो०) नमो नमो श्री जानकी, नमो नमो श्री राम।
कमलाअलि वर माँगती, युगल प्रेम निःकाम ॥
(कमलाअली)

आये सखि सावन अति मन भावन बिनु पिया मोहि ना सोहात, आली । गरज घटा धुनि मोर पपिहरा की सुनि सुनि जियरा डेरात, आली । चलत पवन रिमि झिमि बुंद बरसत परसत हीं जरे गात, आली । कोकिला की कूक सुनि उठत है हूक हिय छन इक कलप बितात, गोप्य अली बिरहिनि अति ब्याकुल ताहूपै ना पिय आत, आली ॥
(गोप्यअली)

(दो०)बनप्रमोद बिहरैं दोउ, राम सिया सुखधाम ।
लता ओट जब होहिं ललि, इत उत खोजत राम १॥
ललि पद अंकित अवनि लखि, राम रसिक सिर मौर ।
प्रिया चरण रज जानि के, लूटत ठौरहि ठौर ॥ २ ॥
जनकलली के पद कमल, करहिं जाइ जहँ ऐन ।
बिकल तहां उठि धावहीं, श्रीरघुपति के नैन ॥३॥
जय जानकि मम स्वामिनी, जय स्वामी सियनाह ।
सिय सहचरि नित चाहती, लली लाल की चाह॥४॥
(सियसहचरी)

॥ श्रीः ॥

नमो प्रीतम पियारे प्राण वल्लभ ! ।
दरस अपना दिखाओ जो है दुर्लभ ॥ १ ॥
बिनय करता हुं अतिशय प्राण प्यारे ।
लगी है आस चरणों में तुम्हारे ॥ २ ॥
तुम्हारे बिन बहुत दिन प्यारे ! बीते ।
श्रवण लोचन सफल हों अब तुम्ही ते ॥ ३ ॥
दरस तव प्राण वल्लभ ! मैं जो पाऊं ।
कमल चरणों का मधुकर होहि जाऊं ॥ ४ ॥
चरणरज से कृतारथ सीस करके ।
रहूं मैं मोद से निज हीय भर के ॥ ५ ॥
धरे हाथों प श्रीपंकज चरण को ।
सदा देखा करूं शोभा सदन को ॥ ६ ॥
कभी हँस के न बोले तुम सियावर ! ।
कृपाकर ! दो य सुख मुझको दयाकर ॥ ७ ॥
मुझे अपनी झलक प्यारे ! दिखाओ ।
बचन मीठे मुझे अपने सुनाओ ॥ ८ ॥
सदा " राजेन्द्र " सियपिय ध्यान लाओ ।
सुयश श्री प्राणपति के नित्य गाओ ॥ ९ ॥

माधुर्य्यकला (श्री जानकी प्रपन्न राजेन्द्र शरण)

मैं चेरि तेरी तेरा दिया सब । गुण गा सकूं तेरा मैं पिया कब ॥
आँखों में मेरी जगह है तेरी । चितवन तेरी कामना है मेरी ॥

दो० । श्रीजानकि पदकंज सखि, करहिं जासु उर ऐन ।
बिनु प्रयास तेहिपर द्रवहिं, रघुपति राजिव नैन ॥

सीताराम शरण भगवान् प्रसाद